जनप्रतिनिधियों की सुविधाओं पर उठते सवाल

सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश विधानसभा द्वारा पारित वह कानून निरस्त कर दिया है जिसके मुताबिक पूर्व मुख्यमंत्रियों को आजीवन सरकारी बंगले में रहने की सुविधा दी गई थी। कोर्ट का कहना है कि किसी को इस आधार पर सरकारी बंगला अलॉट नहीं किया जा सकता कि वह अतीत में किसी सार्वजनिक पद पर रह चुका है। बात केवल उत्तर प्रदेश की नहीं हैं, बात केवल सरकारी बंगले की ही नहीं है, बात जनप्रतिनिधियों को मिलने वाले वेतन, पेंशन एवं अन्य सुविधाओं की भी है। संविधान में सांसद, विधायक, विधान परिषद सदस्य, स्पीकर, डिप्टी स्पीकर, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, मंत्रियों के वेतन-भत्ते और अन्य सुविधाओं के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार संसद, विधानसभा और विधान परिषद को दिया गया है। दुनिया के अनेक देशों में जनप्रतिनिधियों को वेतन व अन्य सुविधाएं मिलती हैं, परंतु उन्हें निर्धारित करने का अधिकार अन्य संस्थाओं को दिया गया है। स्वस्थ लोकतंत्र के लिये भारत में भी ऐसी व्यवस्था बनना जरूरी है जिसमें जनप्रतिनिधियों को मिलने वाली सुविधा, वेतन, पेंशन आदि निर्णयों के लिये विशेषज्ञों का एक संगठन बने, जो इस तरह के निर्णय राष्ट्र हित को देखते हुए ले।

भारतीय लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग सेवा के उद्देश्य से राजनीति में आते थे, आज सोच बदल गई है। मूल्य बदल गये। माप बदल गये। आज कर्तव्य नहीं, अधिकार की बातें होने लगी हैं। संसद एवं विधानसभाओं में जनता की भलाई से ज्यादा कानून जनप्रतिनिधियों के वेतन, पेंशन, आवास एवं अन्य सुविधाओं के नाम पर पारित किये जाने लगे हैं। एक नई संस्कृति जन्म ले रही है। ये हमें कहां ले जाएगी? बिना सैद्धान्तिक आधार के यह संस्कृति, भटकाव के अंधेरे पैदा कर रही है। मांगें गलत, आश्वासन गलत, और समाधान भी गलत।

जनप्रतिनिधियों को अपने चाल-चलन से आदर्श स्थापित करना चाहिए। लेकिन आज ऐसा लगता है कि जनप्रतिनिधि अपने हित में सरकारी कोष का दुरुपयोग कर रहे हैं। इससे जनप्रतिनिधियों और जनता के बीच में अविश्वास की खाई दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जो स्वस्थ लोकतंत्रात्मक समाज को कायम रखने में बाधक सिद्ध हो सकती है।

उत्तर प्रदेश सरकार को कोर्ट द्वारा दिया गया यह दूसरा झटका है। इससे पहले 2016 में सुप्रीम कोर्ट ने इसी आशय का आदेश जारी किया था जिसे बेअसर करने के लिए तत्कालीन अखिलेश सरकार ने विधानसभा से नया कानून पारित करवाया। इस नए कानून को एक एनजीओ ने अदालत में चुनौती दी थी। कोर्ट ने सरकार की इस दलील को खारिज कर दिया कि चूंकि सभी पूर्व मुख्यमंत्रियों को जेड प्लस सुरक्षा मिली हुई है, इसलिए उन्हें आवास की सुविधा भी मिलनी चाहिए। अदालत ने सुरक्षा और अन्य प्रोटोकॉल की जरूरत को स्वीकार किया, लेकिन कहा कि इसे सरकारी बंगला आवंटित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता।

यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि हाल के दिनों में हमारे जनप्रतिनिधियों में अपने लिए अधिक से अधिक फायदा बटोरने का प्रचलन बढ़ रहा है। अपना वेतन और भत्ता बढ़वाने के लिए वे जाने कहां-कहां से तर्क उठा लाते हैं। यह देखने की जहमत नहीं मोल लेते कि जिनका प्रतिनिधि होने के नाते वे

तमाम सुविधाएं मांग रहे हैं, वे लोग किन हालात में रहते हैं। गरीबी, भूख, अभाव एवं जनसुविधाओं के नाम पर बेहाली को जीने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐशो-आराम की जिन्दगी जिये, कैसे जायज हो सकता है ? देखा जाता है कि एक ओर लोगों के पास चढ़ने को साइकिल भी नहीं है और दूसरी ओर जनप्रतिनिधि लोग लाखों रुपयों की कीमती कारों में घूमते हैं। एक ओर देश के लाखों-करोड़ों लोगों के पास झोपड़ी भी उपलब्ध नहीं है और दूसरी ओर जनप्रतिनिधि एयरकंडीशन कोठियों-बंगलों में रहते हैं। पिता मिठाई खाये और बच्चे भूखे मरे, क्या यह एक आदर्श समाज व्यवस्था है ?

नेतृत्व की पुरानी परिभाषा थी, "सबको साथ लेकर चलना, निर्णय लेने की क्षमता, समस्या का सही समाधान, कथनी-करनी की समानता, लोगां का विश्वास, पारदर्शिता, सादगी एवं संयम।" इन शब्दों को किताबों में डालकर अलमारियों में रख दिया गया है। नेतृत्व का आदर्श न पक्ष में है और न प्रतिपक्ष में। जनप्रतिनिधि जनता के आदर्श होने चाहिए, क्योंकि आम जनता जनप्रतिनिधि, मंत्रियों मुख्यमंत्रियों, प्रधानमंत्री को ही अपने रोल मॉडल के रूप में देखते हैं। जब मुख्यमंत्री ही ऐसा आचरण प्रस्तुत करेंगे तो वे सादगी का पाठ किनसे सीखेंगे! सुप्रीम कोर्ट का यह आदेश भले ही यूपी के पूर्व मुख्यमंत्रियों के संदर्भ में दिया गया हो, पर जिन सिद्धांतों और मान्यताओं को इस फैसले का आधार बनाया गया है वे व्यापक हैं और अन्य राज्यों तथा केंद्र पर भी लागू होते हैं। देखना होगा कि हमारी राजनीति सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से आंखें मूंदे बैठी रहती है या इसे शब्दों व भावनाओं के अनुरूप हर स्तर पर लागू करने की पहल करती है।

इस तरह चाहे बात पूर्व मुख्यमंत्रियों को आजीवन सरकारी बंगला दिये जाने की हो या जनप्रतिनिधियों के पेंशन की हो या वेतन की हो, या अन्य सुविधाओं की, हमारे देश के नियमों के अनुसार वे सार्वजनिक हित में नहीं हैं। इन नियमों में परिवर्तन आवश्यक है। कम से कम सांसदों और विधायकों का वह अधिकार समाप्त कर देना चाहिए जिसके चलते वे स्वयं अपने स्वयं के लिये सुविधाएं एवं वेतन आदि निर्धारित कर लेते हैं। इस दिशा में पूर्व लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने पहल की थी, परंतु उन्हें समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। यदि वेतन और पेंशन संबंधी नियमों में परिवर्तन नहीं होता है तो इससे जनप्रतिनिधियों की प्रतिष्ठा पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है वह जारी रहेगा और संसदीय प्रजातंत्र की विश्वसनीयता पर भी सवाल उठेंगे। हमारे संविधान ने संसद और विधानमंडल को सरकार की वित्तीय गतिविधियों पर पूरा नियंत्रण रखने का अधिकार दिया है। बिना संसद और विधानमंडल की स्वीकृति के बिना सरकार एक पैसा भी खर्च नहीं कर सकती, परंतु इस अधिकार का उपयोग स्वयं के लाभ के लिए किया जाना एक दृष्टि से अनैतिक है। इससे राजनीति स्वस्थ नहीं बन सकेगी। यह लोकतंत्र की दुर्बलता को बढ़ाती जायेगी। यदि शासक में सुविधावाद, विलासिता, सरकारी कोष के दुरुपयोग की भावना रहेगी तो देश को संयम, सादगी एवं सदाचार को पाठ कौन पढ़ाएगा ?

संपर्क
(ललित गर्ग)
60, मौसम विहार, तीसरा माला, डीएवी स्कूल के पास, दिल्ली-110051
फोन: 22727486, 9811051133